गुरु अंगद देव जी
(1504–1552, गुरगद्दी : 1539–1552)

गुरु अंगद देव जी का जन्म पंजाब में फीरोज़पुर जिले के गाँव हरीके में 31 मार्च 1504 को हुआ। इनके पिता भाई फेरू जी एक व्यापारी थे। माता–पिता ने इनका नाम लहणा रखा। इनका विवाह 15 वर्ष की आयु में हो गया। इनकी पत्नी, बीबी खीवी, फीरोज़पुर जिले के गाँव 'मत्ते की सरां' की रहने वाली थी। गुरु जी के पिता हरीके से उकता गये और अपने पिता के पुश्तैनी घर, मत्ते दी सरां में आकर बस गये। भाई लहणा जी के घर दो सुपुत्रियाँ– बीबी अमरो और बीबी अनोखी और दो सुपुत्र– दासू और दातू ने जन्म लिया।

जब मुगलों और बलौचों ने 'मत्ते दी सरां' को बर्बाद कर दिया, तब भाई लहणा और उनके पिता खडूर आ गये, जो अब तरन तारन के पास एक प्रसिद्ध नगर है। भाई लहणा अपनी माता, बीबी दया कौर के प्रभाव के अधीन बड़े धार्मिक स्वभाव के हो गये और शक्ति की देवी, दुर्गा के भक्त बन गये। वह श्रद्धालू हिंदुओं की टोली बनाकर हर साल ज्वालामुखी की यात्रा करने जाया करते थे। यहाँ, निचले हिमालय के पहाड़ों में दुर्गा का मंदिर है और पहाड़ों में से आग की लपटें निकलती हैं। भाई लहणा इन आग की लपटों के इर्द–गिर्द घुंघरू पहनकर नृत्य की अगुवाई करते थे।

एक गुरसिख भाई जोघा खडूर में रहता था। उसका नित्य का नियम था, सवेरे पौ फटे उठना और जपुजी और 'आसा दी वार' का पाठ करना। एक दिन जब भाई लहणा ने इस ईश्वरीय बाणी का पाठ ध्यान लगाकर सुना, तो उसका मन शीतल हो उठा। दिन चढ़ा तो भाई जोधा से पूछा कि यह बाणी किसकी रचना है जो मन को इतनी स्फूर्ति प्रदान करती है ? भाई जोधा ने गुरु नानक जी जो उन दिनों करतारपुर में रहते थे, के बारे में विस्तार से बताया। इस दिव्य बाणी के स्पर्श ने भाई लहणा के मन पर ऐसा प्रभाव डाला कि वह गुरु जी के दर्शन के लिए उतावले हो गये। जब वह ज्वालामुखी की अगली वार्षिक यात्रा पर चले, तो राह में करतारपुर में ही रुक गये, गुरु जी को अपना नमन करने के लिए। जब गुरु जी के दर्शन किए तो गुरु नानक जी ने भाई लहणा को सृष्टि के सच्चे रचयिता अकाल पुरुष के बारे में बताया। भाई लहणा के मन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने घुंघरू जो वह देवी के सम्मुख नाचने के लिए लाए थे, फेंक दिए। उनके मन को ऐसी शान्ति मिली कि उन्होंने अपनी यात्रा को छोड़कर गुरु जी के चरणों में रहने का फैसला कर लिया। इनकी बढ़ती हुई श्रद्धा को देखकर गुरु जी ने इनसे अपने गाँव जाने और अपने घर के मामले निपटा कर आने के लिए कहा। यह भी कहा कि जब वे वापस आएँगे तो वह उन्हें सिक्खी में प्रवेश करा देंगे। यह सुनकर भाई लहणा कुछ समय के लिए खडूर आ गये।

भाई लहणा जी को किस तरह गुरगद्दी दी गई, इन सभी हालातों का उल्लेख पिछले अध्याय में किया गया है। एक दिन गुरु जी के सिख एकत्र हुए बैठे थे, तब गुरु जी ने भाई लहणा जी को अपने तख्त पर बैठा कर, पाँच पैसे और नारियल इनके सम्मुख रखकर, अपना शीश निवाया और फिर भाई बुड्ढ़ा जी से कहा, "ये हैं मेरे उत्तराधिकारी गुरु अंगद, इनके मस्तक पर गुरगद्दी सौंपे जाने के चिह्न के रूप में तिलक लगाओ।" भाई बुड्ढ़ा जी ने ऐसा ही किया। फिर, गुरु जी ने सिखों को गुरु अंगद जी का हुक्म मानने और सेवा करने का आदेश दिया कि गुरु अंगद जी मेरा ही रूप हैं। भाई गुरदास जी ने गुरु अंगद देव जी को गुरु की पदवी मिलने का वर्णन अपनी प्रथम वार की 45वीं पउड़ी में इस प्रकार किया है :

"थापिया लहिणा जीवदे, गुरिआई सिरि छत्र फिराया।
जोती जोति मिलाइ कै, सतिगुर नानक रूप वटाया।
लखि न कोई सकई आचरजे आचरज दिखाया।
काया पलटि सरूप बणाया।"

गद्दी पर विराजमान करने के बाद गुरु नानक देव जी ने गुरु अंगद देव जी को आदेश दिया कि वे खडूर वापस चले जाएँ और वहीं निवास करें। गुरु अंगद देव जी ने ऐसा ही किया।

गुरु अंगद जी एकान्त में :

गुरु अंगद देव जी खडूर के निकट एक घर के कमरे में एकान्त में बैठ गये और बाहर से ताला लगवा दिया और अकाल–पुरुख की आराधना में बिना किसी परेशानी या रुकावट के लग गये। रोज़, एक दूध के कटोरे के सिवाय गुरु जी कुछ नहीं लेते थे। लगभग छह महीने इसी तरह गुजर गये और सिखों को गुरु जी के ठिकाने का कुछ पता नहीं था। एक दिन भाई लालो, भाई सैदो और भाई अजिता दूसरे सिखों के साथ भाई बुड्ढ़ा जी के पास आए और पूछा कि गुरु जी कहाँ चले गये हैं ? उन्होंने सारे खडूर नगर में और अन्य स्थानों पर गुरु जी की खोज की थी, पर गुरु जी का पता न लगा था। कहा जाता है कि भाई बुड्ढ़ा जी अन्तर्ध्यान हुए और उस स्थान का पता उन्हें दृष्टिगोचर हुआ। अगली सुबह वे सभी मिलकर खडूर के निकट उस घर की ओर गये, जहाँ गुरु जी एकान्त में विराजमान थे। घर के मालिक ने उन्हें कुछ नहीं बताया, पर अन्दर गुरु जी के पास चार सिखों के आने की खबर दे दी। गुरु जी ने उससे कहा कि उन्हें अन्दर ले आओ। गुरु जी ने भाई बुड्ढ़ा जी को छाती से लगाया और इस श्लोक का उच्चारण किया :

"जो सिरु सांइ ना निवै सो सिरु दीजै डारि।
नानक जिसु पिंजर महि बिरहा नहीं सो पिंजरु लै जारि।"

(श्लोक महल्ला 2, पृष्ठ 89)

भाई बुड्ढ़ा जी ने गुरु जी के सम्मुख विनती की कि वे आएँ और गुरगद्दी पर विराजमान होकर संगतों को दर्शन दें। इसके बाद गुरु जी एकान्तवास से बाहर आ गये। पता चलने पर संगतों की भीड़ अपनी भेंटें लेकर गुरु जी के दर्शन करने के लिए आ गईं। जो कुछ भी उपहार में आया, गुरु जी ने लंगर में भेज दिया। निरंतर प्रचार, शबद–बाणी का कीर्तन और नाम सिमिरन होने लगा।

बादषाह हिमायूं का गुरु जी के दर्शन के लिए आना :

बादशाह हिमायूं अपने पिता बाबर के बाद गद्दी पर बैठा, पर वह शेर शाह के हाथों बुरी तरह पराजित हुआ। हिमायूं ने पूछ–पड़ताल की कि ऐसा कोई महात्मा है, जो तख्त और राजपाट वापस दिलाने में उसकी मदद कर सकता है। उसे गुरु अंगद देव जी से सहायता मांगने की सलाह दी गई। सो, हिमायूं खडूर में गुरु जी के पास आया। उस समय गुरु जी समाधि में लीन थे और रबाबी बाणी का कीर्तन कर रहे थे। हिमायूं की ओर ध्यान न दिए जाने पर उसे प्रतीक्षा में खड़े रहना पड़ा। उसे बड़ा क्रोध आया और उसने अपनी तलवार की मूठ पर हाथ रखा, गुरु जी पर वार करने के लिए। पर तलवार म्यान में से बाहर न आ सकी, जिसके कारण हिमायूं लज्जित–सा होकर पष्चाताप करने लगा। गुरु जी ने उससे कहा, "शेर शाह के साथ जंग के समय तेरी तलवार कहाँ थी ? अब तू वहाँ से भागकर फकीरों के पास आया है और सत्कार सहित नमस्कार करने के बदले उन फकीरों पर तलवार चलाने लगा है, जो अपनी आराधना में लगे हुए हैं। रणक्षेत्र में से कायर की तरह भाग आया है, अब शूरवीर होने का दिखावा करते हुए फकीरों पर हमला करना चाहता है ?" हिमायूं बेहद पछताया और गुरु जी के सम्मुख हाथ जोड़कर उसने उनसे रूहानी मदद की प्रार्थना की। गुरु जी ने उत्तर दिया, "अगर तू तलवार पर हाथ न रखता तो तुझे अपना राज्य उसी वक्त मिल जाता। पर अब तू कुछ समय के लिए अपने देश लौट जाएगा और जब वापस आएगा, तेरा राज्य वापस मिल जाएगा।" हिमायूं अपने देश लौट गया और फ्रांस के बादशाह से घुड़सवार फौज की अतिरिक्त फौज लेकर भारत लौट आया। एक जबर्दस्त जंग लड़ने के बाद उसने दिल्ली पर कब्ज़ा करके अपना राज्य वापस ले लिया।

गुरमुखी लिपि :

पंजाबी की कटी–फटी और अपूर्ण–सी लिपि तो गुरु नानक जी के समय ही प्रचलित थी, पर गुरु अंगद देव जी ने इसमें सुधार कर दिया और इसे सुघड़ बना दिया। क्योंकि गुरु जी ने सुधारी हुई लिपि का प्रयोग आरंभ कर दिया था, इसलिए इस लिपि को 'गुरमुखी' लिपि नाम मिल गया, अर्थात् गुरु जी के मुख से उच्चरित हुई।

इस सुधारी गई लिपि को गुरु जी द्वारा इस्तेमाल किये जाने का महत्व यह है कि गुरु जी अन्य सारी लिपियों को अस्वीकार करके यह लिपि, जो उनकी अपनी और लोगों की बोली के अनुकूल थी, प्रयोग में ले आये। इसने सभ्यता को प्रभावित करने में भी सहायता की। इसके बाद गुरु जी ने गुरमुखी लिपि में ही अपना सब कुछ लेखबद्ध किया।

बाबा अमरदास जी का गुरु अंगद जी की शरण में आना :

बाबा अमरदास जी अमष्तसर के निकट बासरका गाँव में रहते थे। वह वैष्णव मत के पक्के श्रद्धालू थे और नियमित रूप से व्रत रखा करते थे। हर साल वह हरिद्वार यात्रा के लिए जाते, गंगा–स्नान करते और गरीबों को दान दिया करते थे। वह उनकी यात्रा का इक्कीसवां वर्ष था और उनकी आयु 62 वर्ष की हो गयी थी। वह हरिद्वार से वापस लौट रहे थे जब उन्होंने रास्ते में गाँव मिहरा के बाहर रुककर सोने का मन बनाया। यहाँ उन्हें एक वैष्णव साधू मिला जिसके साथ उनकी इतनी निकटता हो गई कि वे एक–दूसरे के लिए भोजन तैयार कर देते थे। जैसे ही वह अपने बाकी के सफ़र पर चले, साधू ने देखा कि बाबा अमरदास एक धर्मात्मा हिंदू वाले सारे कर्तव्य बड़ी लगन के साथ निभाते हैं। उसने बाबा जी से पूछा कि उनका गुरु कौन है जिसने उन्हें ऐसा सदाचार और विवेक बख़्शा है ? बाबा जी ने उत्तर दिया कि उनका कोई गुरु नहीं। यह सुनकर साधू परेशान होकर कहने लगा कि "मैं तो पाप कर बैठा हूँ कि मैंने एक निर्गुरु के हाथों भोजन खा लिया है। मेरी गंगा–स्नान से हुई शुद्धि व्यर्थ हो गई है। मैं अब तभी पवित्र हो सकूँगा अगर मैं लौटकर फिर से गंगा–स्नान करूँ।" यह कहकर साधू चला गया।

इस बात का बाबा अमरदास जी को बड़ा सदमा लगा और अपने दिल में यह सोचते हुए कि मैं निर्गुर हूँ, वह कांप उठे।

"सतिगुर बाझहु गुरु नहीं कोई निगुरे का है नाउ बुरा।"

(राग आसा महल्ला 3, पृष्ठ 435)

वह बहुत गम्भीर सोच में पड़ गये कि गुरु कैसे खोजा जाए, और इसके लिए परमात्मा के आगे सहायता के लिए विनती करने लगे। एक दिन बहुत सुबह बाबा जी के कानों में एक सुरीली ईश्वरीय धुन की आवाज पड़ी, जिसे सुनकर उनका चित्त खिल उठा। वह मुग्ध होकर खड़े–खड़े 'शबद' सुनने लगे। यह आवाज गुरु अंगद देव जी की सुपुत्री बीबी अमरो की थी, जो अभी हाल ही में बाबा जी के भतीजे से ब्याह कर आई थी। बीबी अमरों का यह नित्य का नियम था कि तड़के मुँह अंधेरे उठना, स्नान करके जपुजी और गुरु नानक जी की दूसरी बाणी का पाठ करना। बीबी अमरो इस शबद का पाठ कर रही थी जो बाबा अमरदास जी ने सुना :

"ना भैणा भरजाइआ ना मैं ससुड़ीआह।
सचा साकु न तुटई गुरु मेले सहीआह।
बलिहारी गुर आपणे सद बलिहारै जाउ।
गुर बिनु ऐता भवि थकी, गुरि पिरु मेलिमु दितमु मिलाइ।1। रहाउ।"

(मारू महल्ला 1, पृष्ठ 1015)

बाबा जी ने बीबी अमरो से पूछा कि वह किसकी बाणी का पाठ कर रही थी। उसने उत्तर दिया कि यह गुरु नानक जी का 'शबद' है, जो बीबी ने अपने पिता जी, जो गुरु नानक जी की गद्दी पर बैठे हैं, से सीखा था। बाबा जी ने बीबी से विनती की कि वह उन्हें गुरु जी के पास ले चले। कुछ दिनों के बाद जब बाबा जी गुरु जी के पास पहुँचे, तो गुरु अंगद देव जी समधी के रिश्ते के कारण बाबा जी को गले

लगाकर आदरभाव सहित मिलने के लिए उठ खड़े हुए, पर बाबा जी गुरु जी के चरणों पर गिर पड़े और कहा, "आप ईश्वर का रूप हो और मैं केवल एक कीड़ा हूँ।" गुरु जी के दर्शन करके बाबा जी इतने अभिभूत हो गये कि वहाँ से उनका जाना उनके लिए असहनीय हो उठा। बाबा जी के दिल में गुरु जी के लिए इतना गहरा और गम्भीर प्रेम उमड़ आया कि वह गुरु जी की हर तरह की सेवा करना चाहते थे।

एक दिन रात के भोजन के लिए मास पका था। इस पर बाबा अमरदास जी कहने लगे, "अगर गुरु जी सबके दिलों की जानते हैं तो उन्हें पता होगा कि मैं पक्का वैष्णव हूँ और मांस को हाथ नहीं लगाता।" इसे अनुभव करते हुए गुरु जी ने लंगर परोसने वाले सिख को आदेश दिया कि बाबा जी के लिए केवल दाल परोसी जाए, मांस नहीं। इसके बाद जल्दी ही बाबा जी ने विचार किया कि एक शिष्य का बर्ताव अगर अपने गुरु के बर्ताव से भिन्न है तो वह सफल नहीं होगा। बाबा जी ने लंगर परोसने वाले सिख से विनती की कि अगर गुरु जी खुद भोजन करते हुए छोड़े हुए मांस को देने की कृपा करें, तो उसे मैं खा लूँगा। वह मांस मुझे दे देना। बाबा जी के अन्य भरम भी दूर करने के लिए गुरु जी ने बाबा जी को उपदेश दिया कि जिस मांस से परहेज करना चाहिए, वह है दूसरों का धन, दूसरों की पत्नियाँ, निन्दा, ईर्ष्या, लोभ और अंहकार। गुरु जी ने फिर इसी भाव के श्लोक का उच्चारण किया जो गुरु ग्रंथ साहिब के महल्ला 1, पृष्ठ 1289 पर है।

गोइंदवाल शहर :

एक दिन गोबिंद नाम का एक सज्जन गुरु जी के पास आया और प्रार्थना की कि अपने संबंधियों के विरुद्ध जो उसने दावा किया हुआ है, वह जीत जाए तो वह गुरु जी के सत्कार में एक शहर बसा देगा। भली किस्मत ने साथ दिया और वह मुकदमा जीत गया। सो, उसने ब्यास नदी के किनारे शहर का निर्माण आरंभ करवा दिया। जितना काम वह दिन के समय करवाता था, वह सब का सब किसी रहस्यमयी ढंग से रात के समय नष्ट हो जाता। गोबिंद गुरु जी के पास हाजिर हुआ और प्रार्थना की कि गुरु जी शहर–निर्माण की उसकी इच्छा को पूरा करने के लिए अपनी कृपा का दान बख्शें।

इस पर गुरु जी ने बाबा अमरदास को गोबिंद की सहायता के लिए भेजा। बाबा जी ने अकाल पुरुख के सम्मुख सहायता के लिए अरदास की। शहर का निर्माण बिना किसी और देरी के आरंभ हो गया और बाबा जी ने इस शहर का नाम गोबिंदवाल रख दिया। बाद में यह गोइंदवाल कहलाने लग पड़ा। गोबिंद उपकार करने वाले बाबा अमरदास जी के लिए उस शहर में एक महल बनवाना नहीं भूला। जब सारा काम सफलतापूर्वक समाप्त हो गया, तब गोबिंद गुरु अंगद देव जी के चरणों में धन्यवाद अर्पित करने आया और विनती की कि वह नव–निर्मित शहर में आएँ और वहीं रहें। गुरु जी अपने नगर से जाना नहीं चाहते थे, सो, उन्होंने बाबा अमरदास जी को हुक्म दिया कि रात के समय वे गोबिंदवाल में रहा करें और दिन के समय उनके पास आ जाया करें। बाबा जी गुरु जी का आदेश मानकर गोबिंदवाल में जा बसे। समय बीतने पर बाबा जी अपने संबंधियों को बासरका से ले आए और यहाँ पर उनके बसने में सहायता की।

बाबा अमरदास जी अब गोबिंदवाल रहते थे और उनका नित्य का नियम था कि सवेरे सूर्योदय के समय उठ जाना और ब्यास नदी में से एक गागर पानी की भरकर खडूर जाना, जो वहाँ से लगभग तीन मील दूर था। पानी की गागर गुरु अंगद देव जी के स्नान के लिए हुआ करती थी। राह में बाबा जी जपुजी का पाठ करते हुए आते। अधरस्ते में एक जगह है, दमदमा अर्थात दम लेने का स्थान। ऐसा कहा जाता है कि बाबा जी यहाँ पल भर रुककर साँस लेते थे। बाद में, इस स्थान पर एक गुरद्वारा बनाया गया। 'आसा दी वार' का कीर्तन समाप्त होने के बाद बाबा जी गुरु के लंगर के लिए पानी लेकर आते, लंगर के बर्तन मांजते और लंगर में इस्तेमाल होने वाले ईधन के लिए जंगल में से लकड़ियाँ लाया करते। दिन के समय वह गुरु जी से गुरबाणी की शिक्षा भी लेते। शाम पड़ने पर बाबा जी सोदर और कीर्तन में हाजिरी भरते। **गुरु जी विश्राम करने चले जाते तो बाबा जी उल्टे पांव चलते, ताकि गुरु जी की ओर पीठ करने का निरादर न हो पाए, और गोबिंदवाल वापस लौट जाते।**

गुरु अंगद जी और तपा :

खडूर में तपा नाम का एक साधू रहता था। केवल खहिरा जट्ट ही उसके श्रद्धालू थे। तपा गुरु जी से ईर्ष्या रखता था और गुरु जी के श्रद्धालुओं की ओर से उनका सत्कार होता देखकर तर्क किया करता था। वह दावा करता था कि गुरु जी के बजाय लोग उसकी पूजा करें, क्योंकि गुरु जी गृहस्थ हैं, सन्यासी नहीं।

एक वर्ष बरसात न हुई जिसके कारण सूखा पड़ गया। लोग बहुत परेशान थे और तपा के पास बारिश करवाने के लिए सहायता मांगने आए। तपा ने कहा कि वह साधू है, पर लोग उसकी पूजा नहीं करते और उसके स्थान पर हर कोई एक गृहस्थ (गुरु जी) की पूजा करता है। सो, जाओ, गुरु से कहो, पानी बरसाये। वे लोग गुरु जी के पास गये। गुरु जी ने उत्तर दिया, "ईश्वर की रजा में राजी रहो।" वे फिर तपा के पास गये जिसने उनसे कहा, "अगर तुम लोग गुरु को नगर में से निकाल दो, तो मैं चौबीस घंटों में बरसात करवा दूँगा।" आखिर, गुरु जी ने नगर छोड़ दिया और खडूर से सात गाँव दूर, जहाँ तपा का कोई प्रभाव नहीं था, जाकर रहने लगे।

अगली सुबह जब बाबा अमरदास खडूर आए तो उन्होंने गुरु जी का घर खाली पाया। पूछने पर लोगों ने सारी कहानी सुना दी। इस बीच, तपा बारिश करवाने में सफल न हो सका। सो, बाबा जी ने लोगों से पूछा कि क्या एक दीया सूरज का स्थान ले सकता है ? बाबा जी ने कहा कि अगर लोग बारिश चाहते हैं, तो तपा को इस अवज्ञा का दंड दो। करतार की कुदरत कि जैसे ही तपा को लोग मार रहे थे, मूसलाधार बारिश होने लगी। इसके बाद लोग अपने किये की क्षमा मांगने के लिए गुरु जी के पास गये।

जब गुरु अंगद देव जी ने तपा को दंड देने की बात सुनी, उन्हें बड़ा दुख हुआ और उन्होंने अमरदास जी से कहा, "आपने मेरी संगत का फल प्राप्त नहीं किया, जो है– शान्ति, सहनशीलता और क्षमा।" यह सुनकर बाबा जी गुरु जी के चरणों में गिर पड़े और दीनता के साथ गुरु जी से विनती की कि उनकी भूल को क्षमा कर दें। बाबा जी ने कहा कि तपा को मैंने ही दंड दिलवाया, क्योंकि मैं आपका निरादर नहीं सह सका था। मैं प्रण करता हूँ कि भविष्य में मैं आपके हुक्म की पालना करुँगा।"

एक बार मार्च 1552 में सारी रात पानी बरसता रहा था, ठंडी हवाएँ चलती थीं और बिजली कड़कती थी। बाबा अमरदास अपने गुरु जी के स्नान के लिए ब्यास नदी से पानी की गागर भर कर लाए। जब वे गुरु जी के घर की ओर आ रहे थे, एक किल्ली से उन्हें ठोकर लगी, जिसे एक जुलाहे ने अपनी तानी के लिए जमीन में गाड़ रखा था। बाबा जी जुलाहे की खड्डी में गिर पड़े। यह जुलाहों की बस्ती थी और जब उन्हें किसी के गिरने की आवाज सुनाई दी, तो एक जुलाहे की घरवाली बोली, "इतनी सवेर कौन हो सकता है ? बेघरा अमरू ही होगा जो ना सोता है, ना आराम करता और थकता भी नहीं। वह रोज दरिया में से पानी ढोता है और जंगल में से लकड़ियाँ लाता है और गुरु कैसा है, जो इस तरह सेवा करवा रहा है!"

गुरु जी ने इसे गहराई से महसूस किया और अंदर तक प्रभावित हुए। उन्होंने बाबा अमरदास जी को छाती से लगा लिया (तब बाबा जी की आयु 73 वर्ष की थी) और कहा, "मेरे अमरदास जी बेघरों के घर, अनादरों का आदर, शक्तिहीनों की शक्ति, निराश्रयों का आश्रय और बंदियों को कैद से छुटकारा दिलाने वाले होंगे।"

उसके बाद गुरु अंगद देव जी ने बाबा अमरदास जी को अपनी गद्दी पर बिठाया, पाँच पैसे और एक नारियल उनके सम्मुख रखकर माथा टेक दिया और भाई बुड्ढा जी से बाबा जी के मस्तक पर गुरगद्दी का तिलक लगाने के लिए कहा। तब बाबा जी तीसरे गुरु, गुरु अमरदास जी बन गये।

"जोति ओहा जुगति साइ सहि काया फेरि पलटीयै।"

(रामकली की वार, राय बलवंड, पृष्ठ 966)

गुरु अंगद देव जी ने उन्हें गोबिंदवाल जाकर रहने का आदेश दिया और स्वयं 29 मार्च 1552 को परम ज्योति में समा गये।

गुरु के हुक्म की पालना और अकाल पुरुष की आराधना, ये मुख्य बातें थीं जिनके आधार पर गुरगद्दी के लिए चुनाव किया गया। पुत्रों और संबंधियों के विरोध के बाजवूद गुरु अंगद देव जी ने बाबा अमरदास जी को गुरगद्दी सौंपी, जो कि गुरु नानक देव के ईलाही तख्त के सबसे अधिक योग्य और गुणवान थे।